शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

सामाजिक मुखरता और मानवीय हस्तक्षेप के समकालीन कवि : मंगलेश डबराल

डॉ.चमन लाल शर्मा
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) एवं
एसोसिएट, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
शिमला, भारत

शोध संक्षेप

वस्तुतः डबराल समकालीन हिन्दी कविता के समर्थ हस्ताक्षर हैं। उनकी रचनाओं ने एक ओर जहां सियासी समाज के उथल-पुथल का गहरा अवलोकन उपस्थिति है, वहीं दूसरी ओर आवारा पूंजी के निरन्तर बढ़ते दबाव को बारीक नजर से देखने के सूक्ष्मदर्शी उपकरण भी मौजूद हैं। जाहिर तौर पर उनकी कविताओं में यातना और नाउम्मीदियाँ भी हैं लेकिन कवि उनसे हर बैर पर आँख मिलाता चलता है। यहाँ जनजीवन को नित नये कोण से परखने का प्रयास किया गया है। मंगलेश डबराल की कविता में रोजमर्रा जिन्दगी के संघर्ष की अनेक अनुगूंजें और घर गाँव तथा पुरखों की अनेक ऐसी स्मृतियाँ हैं जो विचलित करती हैं। हमारे समय की तिक्तता और मानवीय संवेदनों के प्रति घनघोर उदासीनता के माहौल से ही उपजा है उनकी कविता का दुःख। यह दुःख मूल्यवान है क्योंकि इसमें बहुत कुछ बचाने की चेष्टा है।

प्रस्तावना

आज संवेदनाएं सूख रही हैं और बाजार पनप रहा है, मनुष्य के लिए उपस्थित इस संकट काल में कविता जन आंदोलनों से प्रभावित होकर लोकतंत्रात्मकता की ओर झुकी है। इसमें लोकहित के लिए चल रहे विमर्श इसी के परिणाम कहे जा सकते हैं। समकालीन कविता वस्तुतः अपने सामयिक सन्दर्भों से सम्बद्ध है, साथ ही इसे युग विशेष के सन्दर्भों के अनुसार बढ़ती हुई चेतना या मानसिकता का द्योतक भी माना जाता है। जीवन के जटिल यथार्थ और संश्लिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिये कविता से बेहतर औजार भला क्या हो सकता है। अभिव्यक्ति के लिये उठाया गया औजार ही रचना की शक्ति और सीमा को तय करता है। क्या समकालीन कविता में जीवन का ताप भी है ? या फिर वह संवेदनशील हृदय का काव्याभ्यास भर ही है ? क्या कविता का सच कवि का भोगा-जिया सच भी है ? दृश्यगत यथार्थ और अनुभूत यथार्थ के बीच की फांक क्या समकालीन हिन्दी कविता में नहीं दिखती? ऐसे ही कुछ प्रश्न हैं, जिन्हें समकालीन कवि मंगलेश डबराल की कविताओं के माध्यम से समझने की कोशिश की जा रही है।

दरअसल समकालीन हिन्दी कविता में वर्तमान का सीधा-सीधा खुलासा है, क्योंकि इसमें अपनी स्थितियों-परिस्थितियों में जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते-गजरते तथा ठोकर खाकर

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

सोचते वास्तविक आदमी की उपस्थिति है। इस कविता में समय अपने गत्यात्मक रूप में है यह मात्र किसी एक क्षण की कविता नहीं बल्कि काल प्रवाह की कविता है। इसमें एक ओर जहाँ रोष, असंतोष एवं विद्रोह का विस्फोट है वहीं दूसरी ओर प्रतिरोधी चट्टानों, अंधड़, लू-लपट, उपहास, व्यंग्य, लताड़ और अंकुरण के विविध चित्र हैं। जीवन और मूल्यों की अमूर्त धारणाओं के नाद के स्थान पर जीवन की लड़ाई लड़ते हुए उखड़े, बिखरे, दलित और हाशिये के आदमी का विवेचन और विद्रोह है। इसमें कहीं वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्मादों पर घातक संघर्ष करते हुए मनुष्य का चित्र अंकित है तो कहीं सत्य और ईमान का दामन पकड़कर चलने वाले व्यक्ति की कठिनाइयों की अनुभूति की पीड़ा है। दूसरे शब्दों में यदि कहूँ तो समकालीन कविता मानवीय संवेदनाओं की कविता है। समाज व्यवस्था की बुनियादी विसंगतियों पर कठोर प्रहार करने वाली आधुनिक जीवन के तनाव-द्वन्द्व को खुलकर कहने की सामर्थ्य वाली कविता है।1

समकालीन हिन्दी कविता के परिप्रेक्ष्य में यदि कवि मंगलेश डबराल की बात करें तो मंगलेश डबराल मानवीय संवदनाओं के शक्तिशाली कवि हैं। वे सही और सार्थक पहचान के साथ युग, परिवेश और आदमी को कविता का विषय बनाते हैं। कृत्रिम यथार्थ के बजाय सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक व्यवस्था की सही स्थिति को अपनी रचनाओं का कथ्य बनाते हैं। मंगलेश जी को किसी एक वाद अथवा विचारधारा से आबद्ध कर विवेचित नहीं किया जा सकता। इनकी रचनाधार्मिता बहुआयामी है। वह मानवीय संवेदनाओं को व्यापक धरातल पर आत्मसात किये हुए हैं। वे समकालीन हिन्दी कविता को कागजी दुनिया से जमीनी दुनिया से जोड़कर कविता को शिल्प के अपर्याप्त होने के मिथक को भी तोड़ने की कोशिश करते हैं। स्थितियों की गहन पहचान और सामाजिक जटिलताओं को परखने की एक पत्रकारीय दृष्टि से लैस मंगलेश जी की कविताओं में यथास्थितिवाद की परत को तोड़ने की बेचैनी स्पष्ट दिखाई देती है। समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर होने के बावजूद प्रायः समीक्षकों ने उनकी कविता की सीमाओं की ओर भी संकेत किया है। कुछ उन्हें अवसाद और करूणा के कवि घोषित करते हैं कुछ उनकी कविता में 'फ्लीटिंग रियलिटी' का चित्र देखते हैं, कुछ उनकी सादगी में अस्पष्टता के दर्शन करते हैं। वास्तव में मंगलेश को स्वयं अपनी सीमाओं का ज्ञान है उन्होंने आवाहनपरक कविता को अपने स्वभाव के अनुरूप नहीं माना है। डॉ.परमानन्द श्रीवास्तव ने मंगलेश की कविता के वैशिष्ट्य पर रोशनी डालते हुए लिखा है - ''मंगलेश अपने स्वभाव के अनुरूप ही चुपचाप यथार्थ की जटिलता में भी घुसते हैं पर अभिव्यक्ति उनके लिए वहीं सम्भव होती है जब एक स्थिति कम से कम शब्दों में सारे मुखौटे छोड़कर प्रगति जैसी निश्छलता या सादगी में पारदर्शी हो उठे।''2

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मंगलेश भोंपूवादी प्रगतिवादी प्रचारक तरीके से कविता नहीं लिखते। वे मुक्तिबोध की इस चेतावनी से पूर्णतः सहमत हैं और उस पर अमल भी करते हैं कि अगर हम स्थूल यथार्थ में फंसे रहे तो इससे न मनुष्य की संघर्ष चेतना का विकास हो सकता है और न प्रगतिशील विचारधारा का। जिस पहाड़ से चलकर मंगलेश महानगर तक पहुँचे उस पहाड़ को

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

उन्होंने पूरी तरह भुलाया नहीं है। उनके कविता संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' में कवि मौजूद है, पहाड़ पर लालटेन का होना उस जन संघर्ष का भी प्रतीक है जिसकी भूख एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है। जंगल से लगातार दहाड़ का आना तथा पत्थरों पर इच्छाओं का दाँत पैने करना, जन चेतना की जागृति का प्रतीक है। बंजर में बेशुमार पौधों का नृत्य तथा उनका नये मनुष्य की गंध से भर जाना दलित-शोषित की क्रंाति-चेतना की ओर इंगित करता है, लम्बी कविताओं की रचना से बचने वाले कवि मंगलेश ने समकालीन जीवन में बढ़ती बेरूखी, तानाशाही और अमानवीयता को अपने काव्य की विषयवस्तु बनाया है। शहर सबको निगल जाने वाला भयानक अजगर है, शहर को लेकर विरक्ति एवं अनुरक्ति का अजीब सा भाव हमारे मन में रहता है - "मैंने शहर को देखा और मैं मुस्कुराया / वहाँ कोई कैसे रह सकता है / यह जानने मैं गया / और वापस न आया ।"3 वास्तव में "साँप तुम सभ्य तो हुए नहीं" कहकर अज्ञेय ने नगर सभ्यता के जिस छल-दद्म मय रूप पर दो-तरफा वार किया है। मंगलेश की कविता उससे आगे की स्थिति है।

शहर का अमानवीय रूप "आखिरी वारदात" कविता में साफ-साफ दिखाई देता है- शहर एक स्थायी बाढ़ में बहता चला जा रहा है /मुझे लकड़ी या पत्थर की तरह / किनारे फेंकता हुआ।"4 नगर जीवन का मायावी 'गुंजलक' कवि को अपनी लपेट में लेने को आतुर है किन्तु कवि स्मृतियों के रास्ते निकल भागता है। नगर का स्वार्थी ठंडापन उसकी रक्त शिराओं में प्रविष्ट होता जा रहा है। अवसरवाद को अपना कर विद्रोह की आग कैसे ठंडी हो जाती है - "अन्ततः मैं शान्त और सन्तुष्ट रहूँगा / बिना हैरत बिना अफसोस / सोचता हुआ कैसे सुलझा लिए मैंने जीवन के संकट।"5 इस आत्मकेन्द्रित स्वार्थ की धुरी पर नाचती सभ्यता में कवि अकेला नहीं है - "दलदल में धसेंगे पैर / सूझेगा नहीं रास्ता सन्नाटे में / तब हम पुकारेंगे एक दूसरे को।"6 तकलीफों की इस दुनिया में कवि पस्तहिम्मती से बचता है और अपने आत्मविश्वास को ढ़हने नहीं देता - "चाहे जैसी भी हवा हो / यहीं हमें जलानी है अपनी आग / जैसा भी वक्त हो / इसी में खोजनी है अपनी हँसी / जब बादल नहीं होंगे / खूब तारे होंगे आसमान में / उन्हें देखते हम याद करेंगे अपना रास्ता।"7

'स्व' के कोटर में बन्दी न रहकर मंगलेश आज के बुरे आततायी समय के चंगुल में फंसे मनुष्य की चिन्ता सिद्दत से करते हैं।

मंगलेश ने अपने कविता संग्रह 'हम जो देखते हैं' में भूमण्डलीकरण एवं सर्वग्रासी उपभोक्तावाद की चपेट में फंसे मानव-जीवन की त्रासदी को उजागर करते हुए मानवीयता के स्पर्श को बचाये रखने पर जोर दिया है। "मैं चाहता हूँ कि स्पर्श बचा रहे / वह नहीं जो कंधे छीलता हुआ आततायी की तरह गुजरता है/ बल्कि वह जो एक अनजानी यात्रा के बाद/ धरती के किसी छोर पर पहुँचने जैसा होता है।"8 'ज्योतिष' कविता इस कपट विद्या के शिकार आर्थिक दृष्टि से कमजोर सामान्य जन की नियति का खाका खींचती है - "नींद में उन्हीं को दिखता है एक दुर्भिक्ष / महंगाई महामारी चारों ओर / नींद में कोई उन्हें गिरा देता बिस्तर से / दूर तक बहकर जाते उन्हें घर - असबाब / सुबह उठते वे /रात भर किसी नक्षत्र के हाथों पिटे हुए।"9

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

स्पष्टतः कहा जा सकता है कि मंगलेश की कविताओं में जीवन से व्यापक जुड़ाव का अन्तर्नाद दूर तलक सुनाई देता है एक बेगाने और असन्तुलित दौर में मंगलेश डबराल अपनी नई कविता के साथ प्रस्तुत होते हैं - अपने शत्रु को साथ लिए बारह साल के अन्तराल में आये उनके नये काव्य संग्रह 'नये युग में शत्रु' में उनकी कलादृष्टि, उनकी राजनीतिक सोच, उनका अन्तःकरण का आयतन सब कुछ है एक साथ एक समय।" भारतीय समाज में पिछले दो ढ़ाई दशक के फासिष्ट उभार, साम्प्रदायिक राजनीति और पूंजी के नृशंस आक्रमण से जर्जर हो चुके लोकतंत्र के अहवाल यहाँ मौजूद हैं और इसके बरक्स एक सौन्दर्य चेतस कलाकार की उधेड़बुन और पारदर्शी आकलन भी, ऊपर से शांत, संयमित और कोमल दिखने वाली लगभग आधी सदी से पकती हुई मंगलेश की कविता हमेशा सख्त जान रही है - किसी भी चीज के लिए तैयार ! इतिहास ने जो जख्म दिये हैं उन्हें दर्ज करने मानवीय यातना को सोखते और प्रतिरोध में ही उम्मीद का कारनामा लिखने के लिए हमेशा प्रतिबद्ध।"10 मंगलेश की कविताओं में नुकली चीजों को उठाकर बाहर फेंक देने का तीखा आह्वान भी है लेकिन ये तीखापन भी असल में मंगलेश का अपना ही विशिष्ट तरीका है, जिसमें शोर, आवाजें और शौर्य प्रदर्शन नहीं है। मंगलेश की कविताएं मानों उस लम्बे समय से खाली पड़ी जगह को भरती आयी हैं जो प्रतिरोध की कही जाती थी और हमारे लोकतंत्र के क्रूर मजाकों को देखती, सुनती और कहती थी और जिसे हिन्दी के बड़े कवि रघुवीर सहाय ने रिपोर्ट करते हुए अपनी कविताओं में दर्ज किया है। मंगलेश जी के सद्य प्रकाशित कविता संग्रह 'नये युग में शत्रु' में मनुष्य के सपनों और शोषण की कई परतें दिखाई देती हैं। नब्बे के दशक में जिस ग्लोबलाइजेशन की ..... से भारतीय समाज में हलचल आ गयी थी। वह कैसे फिर अपनी जगह में शांत, स्थिर हो गया जैसे कुछ हुआ ही न हो, पर उसके भीतर उकलते लावे को देखने की शक्ति मंगलेश की कविताओं में है -"अन्ततः हमारा शत्रु भी / एक नये युग में प्रवेश करता है / और उसके तहखाने में चला जाता है / जो इस सदी और सहस्त्राब्दि के भविष्य की तरह अज्ञात है।"11

वस्तुतः यह कविता नये युग के शत्रु की शिनाख्त की कई मिशालें देते हुए आखिरकार उसके निर्णायक आइडेंटिफिकेशन का काम अपनी जनता के विवेक पर छोड़ती है। इस कविता में इतना थ्रिल, इतनी उद्विग्नता है कि आप उस "नये शत्रु" को अपने सामने से गुजरता हुआ देख सकते हैं - मंगलेश की कविताओं में सामाजिक मुखरता की अनुगूंज साफ-साफ न केवल सुनाई देती है बल्कि वह उसकी भागीदार भी है और उसके आगे रोशनी दिखाती हुई चलती सी भी है। उनकी रचनाएं एक ऐसी कविता को सम्भव करती हुई दिखाई देती हंै जो विभिन्न ताकतों के जरिये भ्रष्ट होती जा रही संवेदना और निरर्थक बनती भाषा में एक मानवीय हस्तक्षेप कर सके। उनकी कविताएं उन अनेक चीजों की उपहरों से भरी हैं जो हमारी क्रूर व्यवस्था में या तो खो गयी हैं या लगातार क्षरित और नष्ट होती जा रही हैं, वे उन खोई हुई चीजों को देख लेती हैं। उनके संसार तक पहुँच जाती हैं, और इस तरह एक साथ हमारे बचे-खुचे वर्तमान जीवन के अभावों और उन अभावों को पैदा करने वाले तंत्र की भी पहचान करती हंै। अपने

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

समय, समाज, परिवार और खुद अपने आप से एक नैतिक साक्षात्कार इन कविताओं का एक मुख्य वक्तव्य कहा जा सकता है।'' 'हम जो देखते हैं' संग्रह में कई ऐसी कविताएं भी हैं जो चीजों, स्थितियों और कहीं-कहीं अमूर्तनों के वर्णन की तरह दिखती हंै और जिनकी संरचना गद्यात्मक है, किसी नये प्रयोग का दावा किये बगैर ये कविताएं अनुभव की एक नयी प्रक्रिया और बुनावट को प्रकट करती हैं जहाँ अनेक बार वर्णन ही एक सार्थक वक्तव्य में बदल जाता है, पर गद्य का सहारा लेती ये कविताएं 'गद्य कविताएँ' नहीं हैं। मंगलेश की ज्यादातर कविताओं की रचना-सामग्री हमारी साधारण तात्कालिक है दैनन्दिन और परिचित दुनिया से ली गयी हैं पर कविता में वह अपनी बुनियादी शक्ल को बनाये रखकर कई असाधारण और अपरिचित अर्थों की ओर चली जाती है। विडम्बना, करूणा और विनम्र शिल्प मंगलेश की कविता की सहज विशिष्टताएं हैं उनकी कविता कितने ही गहरे आशयों से उपजी हैं और जिनमें आक्रामकता के मुकाबले कहीं अधिक बेचैन करने की क्षमता है।

वस्तुतः डबराल समकालीन हिन्दी कविता के समर्थ हस्ताक्षर हैं, उनकी रचनाओं ने एक ओर जहां सियासी समाज के उथल-पुथल का गहरा अवलोकन उपस्थिति है वहीं दूसरी ओर आवारा पूंजी के निरन्तर बढ़ते दबाव को बारीक नजर से देखने के सूक्ष्मदर्शी उपकरण भी मौजूद हैं। जाहिर तौर पर उनकी कविताओं में यातना और नाउम्मीदियाँ भी हैं लेकिन कवि उनसे हर बैर पर आँख मिलाता चलता है। यहाँ जनजीवन को नित नये कोण से परखने का प्रयास किया गया है। मंगलेश डबराल की कविता में रोजमर्रा जिन्दगी के संघर्ष की अनेक अनुगूंजें और घर गाँव तथा पुरखों की अनेक ऐसी स्मृतियाँ हैं जो विचलित करती हंै। हमारे समय की तिक्तता और मानवीय संवेदनों के प्रति घनघोर उदासीनता के माहौल से ही उपजा है उनकी कविता का दुःख। यह दुःख मूल्यवान है क्योंकि इसमें बहुत कुछ बचाने की चेष्टा है। कविता की एक भूमिका निश्चय ही आदमी के उन ऐन्द्रिय और भावात्मक संवेदनों को सहेजने की भी है। जिन्हें आज की अधकचरी और कभी-कभी तो मनुष्य विरोधी राजनीति तथा एक बढ़ती हुई व्यावसायिक दृष्टि लगातार नष्ट कर रही है।12 समकालीन कविता कोई स्वायत्त घटना नहीं, उसे हमारे समय में उपस्थित सामाजिक और राजनीतिक दृश्य की सापेक्षता में ही देखा जा सकता है।13 कविता की समस्याएं जीवन जगत की समस्याओं से अलग नहीं।

निष्कर्ष

प्रकृति के साथ मनुष्य के सम्बन्धों पर भी एक हिसाबी-किताबी दृष्टि का ही कब्जा होता जा रहा है, मंगलेश जी की कविता पेड़ को 'करोड़ों चिडियों की नींद' से जोड़ती हुई जैसे इस तरह के कब्जे के खिलाफ खड़ी है। इन कविताओं में एक पारदर्शी ईमानदारी और आत्मिक चमक है, मंगलेश जी की कविताओं में हमें अनुभवों, बिम्बों और जीवन स्थितियों का एक ऐसा संसार मिलता है जिसमें जिजिविषा की स्पष्ट टंकार सुनाई देती है। जीवन के भीतरी दबावों के लिए इनकी कविता एक "सेफ्टी वाल्व" का काम भी करती है। जीवन में कविता का हस्तक्षेप जितना अधिक होगा मनुष्य का जीवन नीरस गद्य होने से उतना ही बचा रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 डॉ..महेन्द्र पाल कौशिक - आधुनिक हिन्दी कविता में जीवन दर्शन (भाग-2), संजय प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-810

2 डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र - समकालीन हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर, अमन प्रकाशन, कानपुर, उत्तरप्रदेश, प्रथम संस्करण, 2011, पृष्ठ-171

3 मंगलेश डबराल - पहाड़ पर लालटेन - राधाकृष्ण प्रकाश, नई दिल्ली, पृष्ठ-47

4 मंगलेश डबराल - पहाड़ पर लालटेन - राधाकृष्ण प्रकाश, नई दिल्ली, पृष्ठ-123

5 मंगलेश डबराल - घर का रस्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 98

6 मंगलेश डबराल - घर का रस्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-37

7 मंगलेश डबराल - घर का रस्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 136

8 मंगलेश डबराल - हम जो देखते हैं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 72

9 मंगलेश डबराल - आवाज की एक जगह है, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ- 49

10 असद जैदी- नये युग में शत्रु, जुलाई 28, 2013, जिद्दी धुन ब्लाग स्पाट काम

11 मंगलेश डबराल - नये युग में शत्रु, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 122

12 प्रयाग शुक्ल- घर का रास्ता, भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ- 4

13 कुमार अम्बुज- किसी भी समाज में आलोचना स्वायत्त घटना नहीं होती, आलोचना - अप्रैल-जून 2003